Introduction

प्रस्तावना

स्वाभाविक रुप से जीव मात्र सुखान्वेषी है । शाश्वत सुख और आनंद जीव का स्वरुप है । वह परमानंद सच्चिदानंद ईश्वर का ही अंश है ।

तुलसीजीने अरण्यकाण्ड में लिखा है कि –

"ईश्वर अंश जीव अविनाशी ।
चेतन अमल सहज सुखराशी ।" (अरण्यकांड)

यह शुद्ध, बुद्ध, सहज सुखधाम और चैतन्य स्वरुप जीव अथवा आत्मा परमसुखधाम निरंजन, निराकार, निर्विकार, नित्य, शाश्वत, पुरातन, अविनाशी और अप्रमेय परमात्मा को पाने के लिये अथवा परमात्म स्वरुप बनने के लिए सदा तत्पर रहता है ।

जिस प्रकार नदी का गंतव्य महासागर ही है वैसे आत्मा का गंतव्य परमात्मा है । पंचमहाभूत को धारण करके संसार में आया हुआ जीव हंमेशा जगत्, माया, ईश्वर आदि के विषय में अनेक प्रश्न उठाता रहता है । मैं कौन हूँ? मेरा अंतिम लक्ष्य क्या है ? ईश्वर क्या है ? – आदि प्रश्न ज्ञानविचार में से प्रकट होते हैं । इन सारे प्रश्न स्थूल संबंधी नहीं परंतु सूक्ष्मसंबंधी हैं । इस प्रकार के प्रश्नों का उठना और चिंतन से समाधान पाना – सारी प्रक्रिया को हम दर्शन कह सकते हैं । और किसी भी प्रकार के बौद्धिक आयास–प्रयास के बिना संपूर्ण श्रद्धा और शरणागतिभाव से परमतत्व के चरणों में स्वयं को समर्पित करने की कला को भक्ति कहा गया है ।

आनंद का केन्द्रबिंदु क्या है ? उसकी निरंतर अबाधित धारा बहाने का साधन क्या है ? आदि प्रश्न दार्शनिकों की दृष्टि से विचारणीय है परंतु भक्त भक्ति के माध्यम से सीधा निर्विचार स्थितिमें जाकर परिपूर्ण परमात्मा से आनंद लेने लगता है ।

इस प्रकार दार्शनिक (ज्ञानी) और भक्त दोनों सांसारिक सुखों को त्याग कर सद् अभ्यास से अक्षुण्य सुख की खोज कर लेता है ।

इस शोध प्रबंध में मैंने भक्ति और दर्शन जो मानस में निहित है उनका अनुशीलन करने की चेष्टा की है । भक्ति शब्द के अर्थ अनुराग, पूजा, उपासना आदि होते हैं । वेदों से लेकर वर्तमान के आचार्यों तक और रामानंदाचार्य से लेकर आचार्य रामचंद्रशुक्ल तक के मतों को मिलाकर देखा जाय तो भक्ति का अर्थ होता है - परमात्मा के प्रति प्रेम, श्रद्धा और समर्पण ।

दर्शन शब्द के भी अनेक अर्थ है । दर्शन शब्द 'दृश' धातु से बना है जिसका अर्थ होता है देखना, समीक्षा करना, जानना, मन की आंख से देखना, ज्ञान विचार, भाव, विचार, बुद्धिमत्ता आदि । परंतु यहां हमें 'दर्शन से' अर्थ ग्रहण करना है 'तत्वदर्शन' । 'तत्' धातु से 'त्व' मिलने से 'तत्व' शब्द बनता है जिसका अर्थ होता है मानव आत्मा की वास्तविक प्रकृति या विश्वव्यापी परमात्मा के समनुरुप विराट सृष्टि या भौतिक संसार । और दर्शन से अर्थ ग्राह्य है ज्ञानपूर्ण दृष्टि से देखना अर्थात् यहां जिस दर्शन की बात हो रही है इससे तात्पर्य है कि आत्मा से लेकर प्राकृतिक सृष्टि तक जो कुछ भी है उसे दृश्यमान और गूढ़ तत्वों को ज्ञान के द्वारा जानने का प्रयास अर्थात् दर्शन ।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि भक्ति हृदय का (भावका) विषय है और दर्शन बुद्धि का । भाव और बुद्धि दोनों साहित्य के महत्वपूर्ण अंग हैं । शैली और कल्पना तत्व से साहित्य सुंदर, लोकभोग्य और रोचक बनता है परंतु भाव और बुद्धितत्व तो साहित्य का प्राण है । प्राणों के बीना कलेवर का कोई मूल्य नहीं होता । तुलसी के मानस में भाव और बुद्धि दोनों का समान रुप से निर्वाह हुआ है ।

सामान्य रुप से हमने साहित्य जगत् में ऐखा देखा है कि कवि या लेखक का साहित्य या तो बुद्धिपूर्ण होता है अथवा भावपूर्ण - भाव जगत् में विहार करनेवाले ज्यादातर कवियों की रचनाओं में कभी आकस्मिक रुप से दर्शन का दर्शन हो तो ठीक है अन्यथा दर्शन को ढूंढना पड़ता है और बुद्धि पक्ष सबल है वहां भाव को ढूंढना पडता है ।

इस बात को स्पष्ट करने के लिये उदाहरण के रुप में हम कह सकते हैं कि बुद्धिगम्य वेदों में भक्तितत्व पड़ा है परंतु वह तत्व ढूँढने के लिये आयास

करना पड़ता है और भक्तिभाव से प्रेरित होकर भागवतग्रंथ को लिखनेवाले वेदव्यास की लेखनी में कदम कदम पर भक्ति की शीतलता का स्पर्श होता है । वहां दर्शन नहीं है ऐसा नहीं सक सकते हैं परंतु चौबीसों अवतार की कथा वर्णित होने के कारण, भाव, स्तुति, प्रार्थना, पूजा, सेवा, प्रेम, श्रद्धा समर्पण आदि बार बार उभर कर हमारे सामने आते हैं ।

संक्षेप में हम इतना कह सकते हैं कि भारत के आजतक के साहित्य में – खास करके धार्मिक और आध्यात्मिक साहित्य में प्राचीन से लेकर अर्वाचीन युग तक ऐसा हुआ है कि हृदयपक्ष और बुद्धिपक्ष दोनों का एक ही शास्त्र, ग्रंथ या रचना में समान रुप से निर्वाह होना कम पाया गया है अर्थात् ज्ञान की बात करनेवालोंने केवल ज्ञान की ऊंचाइयों को ही छुआ है और भक्ति की बात करनेवाले संतो या कवियों या ऋषियों ने भक्ति को ही महत्वपूर्ण बताया है । परंतु तुलसीदासजी इनमें अपवाद रूप है ।

तुलसी के समग्र साहित्य में भक्ति और दर्शन दोनों का आस्वाद मिलता है परंतु खास करके गौरवग्रंथोमें प्रमुख ऐसे मानस में तो पग पग पर भक्ति और दर्शन का समानरुप से निर्वाह हुआ है । मानस के सातों सोपानो में कोई कांड एसा नहीं है कि जिसमें शरणागति के भावों के साथ साथ जीव, जगत, आत्मा आदि के विषय में एक या दूसरे पात्र के द्वारा जिज्ञासा प्रकट न की गई हो ।

विद्वता और भावुकता का सुभग समन्वय हमें तुलसी के व्यक्तित्वमें देखने को मिलता है । भक्तमाल के सर्जक संत नाभाजीने तुलसी को भक्तमालके सुभेरु मानकर भक्तों की पंक्तिमें प्रथम स्थान दिया है, तो किसी कविने –

''सूर सुर तुलसी शशी'' – कहकर एक समर्थ कवि के रुप में हिन्दी साहित्याकाश में तुलसी को ध्रुव स्थान प्रदान किया है । इन दोनों बातों से सिद्ध होता है कि तुलसी परम भक्त भी है और उच्चकोटि के कवि भी अर्थात् तुलसी के हृदयपक्ष और बुद्धिपक्ष दोनों सबल है ।

तुलसी के मानस में उदात्तगुण प्रचुरमात्रा में मिलते हैं और तुलसी का उद्देश्य है –

''स्वान्तः सुखाय...'' – अपने आत्मा के सुख की बात करनेवाले तुलसी लोकोत्तर कवि के साथ साथ एक दार्शनिक के रुप में हमारे सामने होते हैं, तो दूसरी ओर वंदनात्मक मंगलाचरण से मानस का आरंभ करके उन्होंने अपने भक्त हृदय का परिचय दिया है ।

दर्शन से आध्यात्मिक प्रश्न उठते हैं और भक्ति में सभी प्रश्न शांत हो जाते हैं, ये दोनों बातें मानस में सहजरुप से मिलती है । यदि हम सूक्ष्म रुप से मानस का अभ्यास करे तो ''नानापुराणनिगमागम सम्मतंयद्....'' श्लोक में ही तुलसी ने अपनी विचारधारा के दोनों पहेलुओं का परिचय दे दिया है। वेदों की विचारधारा पूर्णरुप से दार्शनिक विचारधाराहै और शास्त्रों और पुराणों के युग में अवतारवाद के प्रभाव में भक्ति षोऽशकला से खिल चुकी है । तुलसी कहते हैं कि – ''अनेक पुराण, वेद और (तंत्र) शास्त्र से सम्मत तथा जो रामायण में वर्णित है और कुछ अन्यत्र से भी उपलब्ध श्री रघुनाथजी की कथा को तुलसीदास अपने अन्तःकरण के सुख के लिये अत्यन्त मनोहर भक्तिरचना में विस्तृत करता है ।[1]

वेद के ब्रह्म अर्थात् निर्गुण ब्रह्म से लेकर पुराण के अवतार सगुण ब्रह्म राम तक की यात्रा तुलसीने बड़ी सावधानी से की है अर्थात दर्शन शास्त्र के अभ्यास के बाद अर्थात आध्यात्मिक विषयक सभी प्रश्न बुद्धि के द्वारों से उठने के बाद तुलसी ने सभी प्रश्नों का समाधान ज्ञान के बाद भक्ति में पाया है । इस प्रकार वेदकालीन दर्शन और पुराण और शास्त्रकालीन भक्ति दोनों को बुद्धि और भाव से आत्मसात करने में तुलसी सफल रहे हैं ।

श्रुति में लिखा है कि पूर्ण में ही सुख है । जो अल्प है वह दुःख और मृत्यु है । – यह विधान एक दृष्टि से दार्शनिक विधान है और इसी विधान से प्रश्न उठता है कि पूर्ण क्या है ? तो दर्शन की परमसीमाओं को छूनेवाले उपनिषद ग्रंथों में से ईशावास्य उपनिषद् – ''ॐ पूर्ण मद पूर्ण मिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते'' – कहकर परमतत्व को ही पूर्ण घोषित करते हैं और तुलसी – ''ईश्वर अंश जीव अविनाशी'' – कहकर एक और से दार्शनिक विचारधारा को पुष्ट करते हैं और इस प्रकार आत्मतत्व को परमात्मतत्व के समान ही प्रतिष्ठा

देते हैं तो दूसरी ओर –

"राम ब्रह्म परमारथरुपा"[1] – कहकर एक शरणागत की भांति अपने इष्ट का महिमागान करते हैं । और अपनी इष्ट को ही पूर्ण, समर्थ और सच्चिदानंद रुप मानते हैं ।

मेरे विचार से दर्शन और भक्ति दोनों का सूक्ष्मतिसूक्ष्माभ्यास करने से एक एसी क्षितिज का सृजन होता है जहां दर्शन और भक्ति भिन्न नहीं लगते हैं । दर्शन में वैसे तो ज्ञान, कर्म, भक्ति आदि समाविष्ट हो जाते हैं परंतु भक्ति की दुनिया और प्रभाव अलग ही है इसलिये आचार्यों ने भक्ति और दर्शन को भिन्न भिन्न रुप से समझाने का प्रयत्न किया है ।

दर्शन ज्ञान पर ज्यादा ज़ोर देता है परंतु परमज्ञान वही है कि ज्ञाता और ज्ञेय में अभेद्य स्थापित हो । भक्ति की चरमसीमा भी वही है कि फिर भिन्न भिन्न नहीं रहते भक्त और भगवान वहां राधा कृष्ण रुप बन जाती है और कृष्ण राधा रुप।

नारदभक्ति सुत्र में नारदने भक्तिप्राप्ति का परिणाम बताते हुए कहा कि–

"यल्लब्ध्वा पुमान् सिध्धो भवति, तृप्पो भवति आत्मारामो भवति" –

अर्थात् फिर भजन करनेवाला आत्मा आत्मा न रहकर आत्माराम बन गया अर्थात् राम रुप अर्थात् ब्रह्मरुप बन गया ।

भारतीय दर्शन के अतिमहत्वपूर्ण श्रौतदर्शन के आचार्य शंकर जो परम दार्शनिक और अद्वैतवाद के प्रवर्तक रहे हैं उन्होंने विवेक चूडामणि नाम के ग्रंथ में भागवत की नवधा भक्ति और नारद भक्ति सूत्र की एकादश भक्ति के उपरांत एक अन्य प्रकार की भक्ति दार्शनिक आधार पर बताते हुए कहा है कि –

"स्व स्वरुप अनुसंधानं इति भक्ति....." ।

---

१. रामचरित मानस – अयोध्याकांड : लक्ष्मण निषादराज संवाद

अर्थात् मायिक विश्व की जंजाल से उपर उठकर स्व स्वरुप में लीन होना ही भक्ति है । इस प्रकार यहां भी आत्मा का आत्माराम मय बनने का अर्थ ही व्यंजित होता है ।

मानस का सूक्ष्म अभ्यास करने से स्पष्ट होता है कि तुलसीने इन सारी बातों का अभ्यास बडे सूक्ष्म ढंग से मानस सृजन के पहेले ही कर लिया है। तुलसीचरित्र में विद्वानों का भी मत रहा है कि शेष सनातन जैसे पंडित के सांन्निध्य में काशी जैसे क्षेत्र में रहकर तुलसी ने शास्त्राभ्यास किया है । इस शास्त्राभ्यास और चिंतन मनन के बाद तुलसी को भक्ति और दर्शन दोनों के महत्व को समान रूप से स्वीकारा और इन दोनों तत्वों को सहज ढंग से मानस की कथा में बुनने का प्रयत्न किया । एक हद तक दर्शन अर्थात् ज्ञानपूर्ण बातों को और भावपूर्ण (भक्तिपूर्ण) बातों को भिन्न भिन्न रुप से वर्णित करने के बाद तुलसी को जैसे ही स्वानुभव वर्णित करने का मौका मिला की तुरंत तुलसी ने मानस के अंत का अतिमहत्वपूर्ण कांड उत्तर काण्ड में ज्ञान और भक्ति में अभेद्य स्थापित कर दिया है । काग भुसुंडि गरुड से पूछते हैं कि -

''ज्ञान ही भक्ति ही अंतर केता'' ? - तो तुरंत गरुडजी उत्तर देते हुए कहते हैं कि -

''भक्ति ही ज्ञान ही नहीं कछु भेदा'' - यहां पात्रों के द्वारा तुलसी का चिंतन ही प्रकट हुआ है अर्थात् दर्शन का आधार ज्ञान हो या भक्ति दोनों का चरमलक्ष्य एक है ।

तुलसी ने मानस में एक दार्शनिक की अदा से ब्रह्मराम[१], सगुण[२], निर्गुण[३], सगुण निर्गुण में अभेद्य[४], मोह का कारण अज्ञान[५], राम के विविध अवतार[६], चतुर्व्यूहात्मकता[७], प्रकृतिस्वरुप सीता[८], मायापर[९] राम का आधिपत्य[१०], जगत्[११], जगत् वृथा राम सत्य[१२], मोहनिद्रा[१३], मायावशजीव[१४], कर्मानुसार गति[१५], विद्या–

---

१. रामब्रह्म व्यापक जग जाना । परमानंद परेस पुराना ।

२. व्यापक विश्वरुप भगवाना । तेहि धरि देह चरित कृत नाना ।

३. बिनुपद चले सुने बिनुकाना, कर बिनु करम करे विधि नाना...
...आसि सब भांति अलौकिक करनी, महिमा जासु जाही नहीं बरनी ।

४. नेति नेति जेहि बेद निरुपा, निजानंद निरुपाधि अनूपा...
.... एसे हु प्रभु सेवक बस अहई, भगतहेतु लीला तनु गहई ।

५. सगुनही अजुनही नहीं कचु भेदा, गावहि मुनि पुरान बुध वेदा ।

६. जनम एक दूरं कहहुँ बखानी, सावधान सुनु मति सयानी ।
द्वारपार हरि के प्रिय दोउ, जय अस बिजय जान सब कोऊ
बिप्र सांप ते दूनउ भारे, तास स असुर देह जिन्ह पाई..... ।
... धरि तराह तप एक निपाता, रोई न रहरि दूसर पुनि मारा
भएनिसाचर जाइ तइं महाबीर बलवान ।
कुंभकरन रावन सुभट सुर बिजई जगजान ।
एक बार तिन्ह के हित लागी, धरउ सरीर भगत अनुरागी ।
कम्यप अदिति तहां पितु माता, दशरथ कौसल्या बिख्यावा
एक कलप यहि बिधि अवतारा त्वरित पवित्र किए संसारा ।
स सुख धाम राम असनामा...
विश्वभरत पायन कर जाई....
जाके सुमिरन से रिपु नासा
लक्ष्मण धाम राम प्रिय...

८. सीयाराम मय सब जग जानी...

९. मायाधीस ग्यान गून धाम्....

१०. गगन समी अनल जल धरती, इन्ह कै नाम सहज जह करनी
तव प्रेरित माया उपजाए । सृष्टि हेतु सब ग्रंथन्हि गाए ।

११–१२ जासु सत्यता ते जड़ माया, भास सत्य इव मोह सहाया ।

१३. मोहनिशा सब सोवनहारा, देखत स्वप्न अनेक प्रकार ।

१४. किति सदा माया कर प्रेरा
काल कर्म सुभाव गुण घेरा ।

१५. काहून कोउ दुःख सुखकर दाता
निज कृत कर्म भोग सब भ्राता ।
कर्म प्रधान विध कवि राखा
जो जस कर सो तस कल चाखा ।

अविद्या[१], परमार्थ[२] और ज्ञानप्राप्ति से जीव की ब्रह्ममयता[३] आदि विषयों पर अपने विचार प्रकट किये हैं । इतना ही नहीं परंतु तुलसी के यह विचार भारतीय दर्शन शास्त्र के अनुरुप ही है और दार्शनिकता के साथ साथ एक दक्षभक्त की हैसियत से अथवा अनुभूतियुक्त भाव प्रवाह से भक्ति विषयक मीमांसा भी सविस्तार रुप से की है । उन्होंने भक्ति के प्रकार से लेकर स्वरुप तक की जो सैद्धांतिक चर्चा विविध पात्रों और संवादों के माध्यम से की है वे सारी विचारधारा प्राचीन तमाम भक्ति शास्त्रों से सहमत है । इस शोध प्रबंध में अनेक भक्ति और दर्शन विषयक ग्रंथों का संदर्भ तुलसी के विचारों को पुष्ट करने के लिए दिये गये हैं ।

वैसे तो तुलसी के प्रायः सभी ग्रंथों में भक्ति और दर्शन का सुभग समन्वय मिलता है परंतु मानस में इसका विशेष रुप से निर्वाह हुआ है ।

मानस में यत्र तत्र सर्वत्र भक्ति का महिमागान करते हुए तुलसी ने अविद्या से छूटने का एकमात्र उपाय भक्ति[४], हरिभक्ति का परिणाम[५], भक्ति से माया से मुक्ति[६], परमसुख का मार्ग भक्ति[७], भक्ति-परमार्थ का स्वरुप[८], भक्ति का स्वरुप[९], सब साधनों का एकमात्र फल भक्ति[१०], भक्ति के आगे मुक्ति का भी त्याग[११],

---

१. तेटि कहि भेद सुनहु उम्ह सोऊ
विद्या अस अविद्या दोऊ

२. सखा परम परमारथ एहू
मनक्रम बचन राम पद नेहू ।

३. जानत तुम्हरि तुम्हर होई जाई ।

४. करहिं मोह बस नर अध नाना, स्वारथ रत परलोक नसाना ।
कालरुप तिन्हकर मैं भ्रता दुभ अस अशुभ कर्मकल दाता ।
अस बिचारी जे परम सयाने, भजहि मोहि संस्कृति दुःख जाने ।

५. देखि माया सब बिधि गाढि.... देखी भगति जा छोरइ ताही - १-२०२

६. चले हरषि तजि नगर नृप तापस बनिक भिखारी । ७-४१
जिभि हरिभक्ति पाइ स्त्रय तजहि आश्रमी चाहि ॥

७. सुलभ सुखद मारग यह भाई, भक्तिमोरी पुरान श्रुति गाइ ।७-४५

८. सखा परम परमारथ एटू मन क्रम बचन राम पद नेहू । २/९३

९. सो सुतंत्र अवलंबन आना तेटि आधिन ज्ञान बिज्ञाना । ३/९६

१०. जप तप मख सम दम ब्रत दाना, बिरति बिबेक जोग बिग्याना ।
सब करे फल रघुपति पद प्रेमा, तेहि बिनु कोउ न लावई छेमा । ७-९५

११. ताते मुनि हरिलीन न भयऊ
प्रथमहि भेद भगति बर कयऊ । ३-९

रामभक्ति विज्ञान से दुर्लभ[१], भक्त प्रभु को परमप्रिय[२], ज्ञान और भक्ति में भक्ति श्रेष्ठ[३], भक्ति भवसिंधु में नैया समान[४], कलियुग में एकमात्र साधन भक्ति[५], मनुष्य देह की सार्थकता केवल भक्ति में[६], न मे भक्त प्रवश्यति[७], नवधा भक्ति[८] आदि विषयों पर प्रकाश डाला है ।

---

१. सब मम प्रिय सब मम उपजाए
सब ते अधिक मनुज मोहि भाये ।
तिन्हु तें पुनि मोहि प्रिय भज दासा,
जेहि गति मोरि न दूसरी आसा । ७-४६

२. ग्यानइगम प्रत्यूट कनका, साधन कठीन मनकहुँ टेका ७-४५
भक्ति ही ज्ञान ही नहीं कछु भेदा, उभय हरहिं भव संचय खेदा । ७-११५

३. यत्यादप्लवमेक मेवहि भवाम्को... १-मंगलाचरण

४. कलियुग सम युग आन नहिं जो नर कर जिस्वास
गाई रामगुन गन विमला, भव तर बिनउ प्रयास ७-१०२

५. जिन्ह हरि कथा सुनि नहीं काना श्रवण रघु अहिभवन समाता १/११३

६. जो अपराध भक्त करई
राम रोष पावक सो जरई । २-२१८
तात नाश न होई दास कर.... ७-७९

७. प्रथम भक्ति..... ३-१६

एक दार्शनिक और भक्त के उपरांत एक कुशल समाजशास्त्री और साधु होते हुए भी व्यवहारु बनकर पारिवारिक सुखशांति और सामाजिक समृद्धि तथा संगठन के लिये भाई, पिता, पुत्र, पत्नि, राजा प्रजा आदि के लिये विविध पात्रों के द्वारा परम आदर्श प्रस्थापित किये हैं ।

वेद काल से लेकर आजतक जितने भी भक्ति और दर्शन के सिद्धांत हैं इनमें आत्मा और परमात्मा केन्द्र में रहे हैं, माया, जगत आदि को अच्छे अच्छे आचार्योंने गौण माना है, शंकराचार्य ने भी कहा कि –

''ब्रह्मसत्य जगत् मिथ्या'' –

तुलसी ने आध्यात्मिक शांति के लिये सामाजिक शांति को आधारभूत मानकर सामाजिक स्वस्थता के लिये समाज का छोटा सा स्वरुप अर्थात् परिवार को अत्यंत महत्वपूर्ण मानकर पारिवारिक प्रेम, सेवा, समर्पण आदि विषय पर अत्यंत जोर दिया है – परिवार या संसार को नकारने का जरा सा भी प्रयास नहीं किया है, परंतु संसार को संवारने का और सजाने का उपदेश राम, भरत, दशरथ, लक्ष्मण, सीता, उर्मिला आदि पात्रों के द्वारा मिलता है और इन बातों को मैंने भक्ति के प्रकारो में समाविष्ट करने का प्रयत्न किया है ।

खिन्न और दुःखी हृदय कभी भी योगारुढ नहीं हो सकता, वह योग फिर ज्ञान हो या भक्ति परंतु शांत स्वस्थ और सुखी आत्मा ही दर्शन या भक्ति में जल्दी एकाग्र हो पाता है और एसा वातावरण समाज को प्रदान करने के लिये भ्रातृभक्ति, पितृभक्ति, पतिभक्ति, मातृभक्ति, राजभक्ति, प्रजाभक्ति आदि को भक्ति के बराबर स्थान ही देना चाहिए । तुलसीने प्रायः एसा प्रयास किया है । इस प्रकार लौकिक और अलौकिक दोनों विश्व की यात्रा में तुलसी का मानस और उनके भक्ति दर्शन संबंधी विचार प्रेरणादायी है ।